Page No.:
Date:

यूरोप में धर्मसुधार आंदोलन - (भाग-1)

यूरोप की जनता द्वारा 15वीं-16वीं सदी में गिरिजाघरों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा धर्माधिकारियों के चारित्रिक दोषों एवं भ्रष्ट आचरण के निराकरण के लिए चलाया गया आंदोलन यूरोपीय इतिहास में धर्मसुधार आंदोलन के नाम से विख्यात है। इसके मुख्यत: दो उद्देश्य थे - ईसाई लोगों के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को पुन: समुन्नत करना तथा रोम के पोप के व्यापक धर्म-संबंधी अधिकारों को विनष्ट करना।

कारण

पुनर्जागरण से पहले यूरोप पर कैथोलिक चर्च का एकछत्र साम्राज्य कायम था। व्यक्ति जन्म से लेकर मरण तक चर्च से नियंत्रित रहता था। चर्च का संगठन मजबूत रहने से चर्च का विरोध मुश्किल था। चर्च का प्रभाव इतना अधिक था कि वह भी राज्य के समान कर वसूलता था। सम्राटों को भी पोप के समक्ष घुटने टेकने पड़ते थे। सारा समाज धर्म-केन्द्रित, धर्म-प्रेरित और धर्म-नियंत्रित था।

16वीं सदी तक आते-आते यह एकाधिकार टूटने लगा। पुनर्जागरण ने जो चेतना पैदा कि उससे चर्च की मान्यता धुमिल होने लगी। लोग तर्कवादी हो गये। अब वे पर्याप्त प्रमाण के अभाव में किसी सिद्धांत अथवा बात को स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। छापाखाना के अविष्कार ने पुस्तकों को जनसुलभ बनाया। फलत: धर्मनिरपेक्ष विषयों के अध्ययन से ईसाई धर्म की कुरीतियाँ स्पष्ट होने लगी। बाइबिल का राष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद होने से जनसामान्य भी ईसाई धर्म का मूल समझने लगे। यूरोप के अनेक धर्म सुधारक इटली गये तथा अपने देश लौटकर पोप एवं धर्म में व्याप्त बुराइयों से जनता को अवगत कराया। इस प्रकार पुनर्जागरण ने धर्म-सुधार का मार्ग-प्रशस्त किया।

धर्म-सुधार आंदोलन का सर्वाधिक प्रमुख कारण चर्च में व्याप्त बुराइयाँ थी। पोप तथा पादरी धनी होने तथा किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वयं पर न होने के कारण विलासी एवं भ्रष्ट हो गये थे फलत: चर्च भी भ्रष्टाचार एवं विलासिता का केन्द्र बन गया। पादरियों की अज्ञानता एवं विलासिता, चर्च के पदों एवं सेवाओं की बिक्री, संबंधियों के बीच लाभकारी

Scanned with CamScanner

चर्च के पदों का बँटवारा, एक पादरी द्वारा एक से अधिक चर्च का अध्यक्ष तथा पदों पर काम करना (प्लूरेलिटीज), पादरियों को विवाह करने की अनुमति आदि जनअसंतोष एवं शिकायत की मुख्य वजहें थी।

पोप ईसाई जगत का प्रधान था तथा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। उसने प्रत्येक देश में अपने प्रतिनिधि 'लिगेट' एवं 'ननशियस' नियुक्त किये थे जो पोप के अतिरिक्त किसी की आज्ञा को स्वीकार करने को तैयार न थे। पोप के पास दो विशेषाधिकार भी थे। 'इण्टरडिक्ट' के तहत वह किसी भी देश के अथवा समस्त गिरिजाघरों को बंद करने का आदेश दे सकता था। इससे उस देश में जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के समय होनेवाले समस्त धार्मिक कार्यों पर प्रतिबंध लग जाता। दूसरा विशेषाधिकार 'एक्सकम्यूनिकेशन' था जिसके प्रयोग से वह किसी भी देश के राजा को ईसाई धर्म से च्युत कर सकता था। इससे जनता एवं राजा दोनों भयभीत रहने लगे। पोप ने इस अधिकार का प्रयोग इंग्लैंड के राजा 'हेनरी द्वितीय' पर किया था। कई पोप जैसे अलेक्जेंडर VI तथा लियो दशम नैतिक दृष्टि से पतित थे।

चर्च में फैले भ्रष्टाचार का सीधा संबंध जनता के आर्थिक शोषण से था। हर व्यक्ति को अपने आय का 'दशवांश' चर्च को देना पड़ता था। चर्च के बढ़ते खर्चों की पूर्ति के लिए कर बढ़ने लगे। निश्चित कर के अतिरिक्त भेंट एवं उपहार के रूप में भी चर्च को चढ़ावा देना पड़ता था। कर एवं उपहार जनता पर असहनीय बोझ जैसा था। जनता के शोषण का निकृष्टतम रूप 'क्षमापत्रों' (Indulgence) की बिक्री के समय प्रकट होता था। इसके तहत कोई भी व्यक्ति अपने पाप से मुक्त होने के लिए धन देकर पोप से क्षमापत्र प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार की व्यवस्था ने धनी वर्ग को स्वेच्छा से अत्याचार करने एवं उससे मुक्त होने को प्रेरित किया। पोप प्रत्येक राज्य से उसकी वार्षिक आय का एक अंश जिसे एनेट्स या फर्स्ट फ्रूट (Annates or First Fruit) कहते थे, प्राप्त करता था। चर्च द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण से राजा एवं धनिक दोनों वर्ग क्षुब्ध थे। राष्ट्रीय राज्यों के उदय से राजा को सेना एवं प्रशासन का खर्च चलाने हेतु अधिक धन की आवश्यकता थी। पादरी धनी पर करमुक्त

Scanned with CamScanner

वर्ग थे। चर्च की वास्तव में एक अलग सत्ता थी जो "राज्य के अंदर राज्य" की अवधारणा को सही साबित कर रही थी। धनिकों को ऐतराज था कि चर्च का धन अनुत्पादक है। सूद न लेने संबंधी चर्च का सिद्धांत व्यापार-वाणिज्य की प्रगति में बाधक था। इस प्रकार देखा जाए तो जनता, व्यापारी एवं शासक सभी वर्ग चर्च की आर्थिक-नीतियों से संतप्त थे।

राष्ट्र राज्यों का हित चर्च के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप से मेल नहीं खाता था। राजा चाहता था कि राष्ट्र के अंदर रहनेवाला सभी व्यक्ति और सारी संस्थाओं की श्रद्धा एवं भक्ति राष्ट्र को मिले। जनता में यह भावना जागृत होने लगी थी कि पोप एक विदेशी था, अतः पोप के प्रभाव को समाप्त करने का प्रत्येक देश का कर्तव्य हो गया। जनता अपने देश के प्रति वफादार रहना चाहती थी। जनता राष्ट्र को धर्म एवं गिरिजाघरों से अधिक महत्वपूर्ण मानने लगी थी।

प्रारम्भ में ईसाई धर्म एक सुन्दर एवं पवित्र धर्म था, कोई अपवित्रता विद्यमान न थी किंतु धीरे-2 उसमें बुराइयाँ तथा अन्धविश्वास बढ़ने लगा। अतः आधुनिक युग के आगमन एवं पुनर्जागरण के प्रभाव से लोग नवीन धर्म की आवश्यकता महसूस करने लगे।

प्रमुख सुधारक

14वीं सदी से ही सुधारवादियों का यूरोपीय धार्मिक मंच पर आगमन हो गया था जिन्होंने आगे चलकर मार्टिन लूथर जैसे सुधारकों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। इनमें जॉन वाइक्लिफ, जॉन हस, सेवोनारोला और इरेसमस प्रमुख हैं

(A) जॉन वाइक्लिफ (1320-1384 ई०): वाइक्लिफ ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का प्राध्यापक था। एडवर्ड III के समय उसने गिरिजाघरों के विरुद्ध आवाज उठाई तथा जनता के समक्ष धर्म पर आधृत राजनीतिक प्रभाव तथा उसके दुष्परिणाम रखे। इसने कहा कि -

(a) पोप पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं है तथा भ्रष्ट एवं विवेकहीन पादरियों द्वारा दिये जानेवाले धार्मिक उपदेश व्यर्थ हैं।

(b) प्रत्येक ईसाई को बाइबिल के अनुसार कार्य करना चाहिए न कि चर्च एवं पादरी के मुताबिक।

(c) उसने माँग की कि चर्च की विपुल धन सम्पत्ति पर राज्य को अधिकार कर लेना चाहिए

(d) वह जनभाषा में धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद का पक्षधर था

Scanned with CamScanner

ताकि लोग धर्मग्रंथों के बारे में जान सकें। कैथोलिक चर्च की भाषा 'लैटिन' आम जनभाषा न थी। वाइक्लिफ की प्रेरणा से बाइबिल का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद हुआ।

वाइक्लिफ का विचार एक सीमा तक क्रांतिकारी था यही कारण है कि रूढ़िवादी धर्माधिकारी एवं शिक्षाशास्त्रियों ने विरोध किया। वाइक्लिफ को "The Morning Star of Reformation" कहा गया।

(B) जॉन हस (1369-1415 ई.) - हस बोहेमिया (चेक) का निवासी था और प्राग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। उसके विचारों पर वाइक्लिफ का गहरा प्रभाव पड़ा। उसका कहना था कि एक सामान्य ईसाई, बाइबिल के अध्ययन से ही मुक्ति का मार्ग खोज सकता है और इसके लिए चर्च आदि के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। चर्च की निंदा एवं लोगों में नास्तिकता का प्रचार करने के आरोप में उसे जिंदा जला दिया गया।

(C) सेवोनारोला (1452-1498 ई.)- वह फ्लोरेंस नगर का विद्वान पादरी तथा राजनीतिज्ञ था। उसने पोप के राजसी ठाठ की आलोचना की तथा चर्च के क्रियाकलापों में सुधार पर जोर दिया। पोप एलेग्जेंडर षष्ठम् ने उसे अपने विचार व्यक्त करने की मनाही की लेकिन वह नहीं माना। चर्च की निंदा करने के आरोप में इसे भी जिंदा जला दिया गया।

(D) इरेसमस (1466-1536 ई.): हॉलैंड वासी इरेसमस अपने विचारों की गहनता एवं सुंदर लेखन शैली के लिए जाना जाता है। 1511 में अपनी पुस्तक "द प्रेज ऑफ फॉली" के माध्यम से लोगों को चर्च की बुराइयों से अवगत कराया। भिक्षुओं की अज्ञानता एवं उनके सहज विश्वास की आलोचना की। प्रहसनों एवं उपहासों के माध्यम से पोप की खिल्ली उड़ाई। इरेसमस ने ईसाई धर्म के मूल सिद्धांतों के प्रचार हेतु "न्यू टेस्टामेंट" का 1516 ई. में नया संस्करण निकाल कर धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या की।

Scanned with CamScanner